

## बौद्धकालीन शासन—व्यवस्था : एक संक्षिप्त अवलोकन

डॉ० रेणु बाला\*

प्रस्तुत शोधपत्र बौद्धकालीन शासन—व्यवस्था में राजा, अमात्य, कोषाध्यक्ष सहित राज्य की शासन की समस्त विधाओं की चर्चा की गयी है। साथ ही राज्य की न्याय व्यवस्था और सख्त दंड व्यवस्था को भी दर्शाने का छोटा प्रयास है।

प्राचीन शासन व्यवस्था में विधि अथवा न्याय को धर्म का ही अभिन्न अंग माना गया था। अतः न्याय अनुपालन में नैतिकता पर सर्वाधिक बल दिया जाना स्वाभाविक था। प्राचीन काल में राजा को ईश्वर का अंश माने जाने के कारण उसके द्वारा दिये गये आदेश को ईश्वरीय इच्छा मानकर उसका पालन किया जाता था।

न्याय के कई प्रकार हैं और सबमें व्यापकता तथा एकरूपता दो विशेष गुण पाये जाते हैं जो सभी व्यक्तियों, सभी स्थितियों तथा सभी पदार्थों के उपर लागू होते हैं। मुकदमों का निर्णय करने वाली रीति व नियमों के पुंज को "व्यवहार विधी" कहा जाता है। यह राजा तथा प्रजा दोनों पर लागू होता है, क्योंकि यह राजाज्ञा नहीं बल्कि स्मृतियों एवं महापुरुषों के आचार—विचार द्वारा निर्मित होता है। कानून और न्याय वह विश्वव्यापी सिद्धांत है जिसके आधार पर मानव समाज का अस्तित्व आश्रित है।

समाज द्वारा अंगीकृत एक वैधिक व्यवस्था के अर्न्तगत कानून उन नियमों के पुंज को कहा जाता है जिनको वह समाज अपने कल्याण के लिए आवश्यक जानकर एतदर्थ निर्मित यंत्र द्वारा निष्पादित करने को उद्यत रहता है।<sup>1</sup>

सत्ता एवं शासन की दृष्टि से बौद्ध—काल का राजनीतिक जीवन विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति से आवृत्त था और भारत अनेक इकाईयों में बँटा हुआ था। यद्यपि यह स्थिति स्थानीय चेतना एवं स्वराज्य के अनुकूल थी, तथापि इससे देश में अनेकता तथा आंतरिक दुर्बलता विद्यमान थी। इस काल में एक प्रकार की शासन—पद्धति का अभाव था। कहीं राजतंत्र था तो कहीं पर गणतंत्र और कहीं—कहीं तो दोनो का समन्वय दिखायी पड़ता था।

बौद्ध—काल के सभी जनपदों में एक समान शासन—पद्धति प्रचलित नहीं थी, क्योंकि भिन्न—भिन्न राजतंत्र—राज्यों में राजा की स्थिति भिन्न—भिन्न प्रकार की

\*एम. ए. (प्राचीन इतिहास) प्रभा भवन, गौरक्षणी, सासाराम रोहतास, बिहार।

थी। यही कारण है कि विभिन्न बौद्ध—ग्रंथों एवं जातक—साहित्य में इस विषय में परस्पर विरोधी विचार उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः बौद्ध—साहित्य के अनुसार राजा राज्य का स्वामी नहीं होता था, उसका कार्य केवल प्रजा का पालन तथा अपराधियों को दण्ड देना ही समझा जाता था। वह व्यक्तियों पर कोई अधिकार नहीं रखता था।<sup>2</sup> राजा के इन गुणों के विपरीत जातक—कथाओं में अनेक राजाओं का उल्लेख भी आया है जो अत्याचारी, क्रूर और प्रजापीडक थे। महापिंगल—जातक में वाराणसी के एक राजा का उल्लेख आया है, जिसका नाम महापिंगल था। वह अधर्म से प्रजा पर शासन करता था। दण्ड, कर आदि द्वारा वह जनता को इस प्रकार पीसता था, जैसे कोल्हू में गन्ना पीसा जाता है। वह बड़ा क्रूर, अत्याचारी और भयंकर राजा था। दूसरों के प्रति उसके हृदय में दया का लवलेश भी न था। अपने कुटुम्ब में भी वह अपनी धर्मपत्नी, संतान आदि पर तरह—तरह का अत्याचार करता रहता था।<sup>3</sup>

इस तरह अन्यत्र भी जातक—कथाओं में अत्याचारी एवं क्रूर राजाओं का वर्णन है, पर बहुसंख्यक राजा धार्मिक और प्रजापालक होते थे। जातक—कथाओं में क्रूर और अत्याचारी राजाओं का जिक्र तो अवश्य हुआ है, पर ध्यातव्य है कि इन कथाओं में इन राजाओं की संख्या बहुत कम है। बौद्ध—काल के राजा प्रायः अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले होते थे। जो राजा प्रजा पर अत्याचार करते थे, उनके विरुद्ध विद्रोह भी होते थे।<sup>4</sup>

बौद्ध—काल में राजा का पद प्रायः वंशानुगत होता था, पर राजा के उत्तराधिकारी को राज—सिंहासन पर बैठने से पूर्व यह सिद्ध करना आवश्यक होता था कि वह राज्य—कार्य का संचालन करने के लिए उपयुक्त योग्यता रखता है कि नहीं। सामान्यतः राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राजगद्दी पर बैठता था, किन्तु उसके अयोग्य होने की शंका पर अमात्य लोग उसकी परीक्षा लेते थे और परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर वे किसी अन्य को राज्य प्रदान कर सकते थे। अंधे व विकलांग व्यक्ति को राजा नहीं बनाया जाता था। जबकि राजा के किसी उत्तराधिकारी नहीं होने की स्थिति में राजगद्दी पर राजा के भाई को आसीन किया जाता था।

राजतंत्र—राज्यों में अतिरिक्त अमात्यों का शासन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता था। जातक—साहित्य में स्थान—स्थान पर अमात्यों का जिक्र आता है। अमात्य संख्या में बहुत—से होते थे और राजा को शासन—संबंधी सभी विषयों में परामर्श देने का कार्य करते थे। अमात्यों के लिए सभी विधाओं तथा शिल्पों में निष्णात होना आवश्यक माना जाता था। राजा की मृत्यु के अनन्तर राज्य का संचालन अमात्य ही करते थे। अमात्यों में सबसे प्रधान स्थान पुरोहित का होता था। पुरोहित का पद प्रायः वंशानुगत होता था। कहा जाता था कि पुरोहित का

अनुसरण राजा को उसी प्रकार करना चाहिए, जैसे पुत्र पिता का या शिष्य गुरु का करता है। पुरोहित के अतिरिक्त अन्य अमात्यों में सेनापति, भाण्डागरिक, विनिश्चयमात्य और रज्जुक के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सेनापति का कार्य जहाँ सैन्य संचालन का होता था, वहीं एक मंत्री के रूप में भी कार्य करना होता था। एक स्थान पर सेनापति को अमात्यों का “प्रमुख” भी कहा गया है “विनिश्चयमात्य” न्यायमंत्री को कहा जाता था। वह मुकदमों का फैसला करने के साथ-साथ राजा को धर्म तथा कानून-संबंधी मामलों में परामर्श भी देता था। जबकि “भाण्डागरिक” को कोषाध्यक्ष कहा जाता था।

बौद्ध-काल में शहर के कोतवाल को “नगरगुप्तिक” कहा जाता था जो नगर में शांति-रक्षा का उत्तरदायी होता था। इसे एक स्थान पर “रात्रि का राजा” भी कहा गया है। तात्पर्य यह है कि शासन-व्यवस्था को दृढ़ रूप से चलाने के लिए शासन के कार्यों का विभाजन करके विभिन्न पदाधिकारियों एवं सेवक-गणों की नियुक्ति की जाती थी।

कर-व्यवस्था राजकोष की पूर्णता का मुख्य स्रोत था। राज्य की आय के स्रोत के रूप में शुल्क, बलि अर्थात् कर या दण्ड से प्राप्त धन मुख्य रूप से आता था। जनता के उत्पीड़ित होने पर अथवा संकटग्रस्त होने पर “बलि” वर्जित था। इससे स्पष्ट होता है कि राजा का राजकोष धार्मिक ढंग से संगृहीत होता था तथा समाज का धनी वर्ग स्वेच्छया उन्मुक्तहस्त होकर अपना धन राजकोष में देता था, अर्थात् स्वेच्छा से कर देना जनता का कर्तव्य था। हालाँकि मनमाने ढंग से कर नहीं लिया जाता था, क्योंकि राजपुरुषों द्वारा अनुचित कर लेना पाप माना जाता था। शुल्क ग्रहण करने वाले अधिकारी को “शौल्कक” कहा जाता था।<sup>5</sup>

बौद्धकालीन शासन-व्यवस्था में सुदृढ़ सैन्य-व्यवस्था का होना बिल्कुल आवश्यक था। सेना के लिए उस काल में “बल” शब्द का प्रयोग होता था।<sup>6</sup> तत्कालीन शासन-व्यवस्था में चक्रवर्ती राजा विजय प्राप्त करने के लिए चतुरंगिणी सेना के साथ चारों दिशाओं में जाता था। “अंगुत्तर निकाय” में सैनिकों के संबंध में विभिन्न प्रकार की वीरता का उल्लेख मिलता है, जिसमें कहा गया है कि योद्धा न धूल से और पताकाओं से घबराता है, न ध्वनि सुनकर घबराता है, न प्रहार होने पर घबराता है।<sup>7</sup>

बौद्ध-काल में राजा अपने अमात्यों एवं सेनापति की संयुक्त बैठक में युद्ध का निर्णय लेता था। युद्ध विद्या की जानकारी सैनिकों के लिए आवश्यक था। राजा जब युद्धों में विजयी होता था तो प्रसन्न होकर पुरस्कार स्वरूप सैनिकों को गाँव, नगर या कुरुक्षेत्र, आभूषण, सुवर्ण, मणि, हाथी, घोड़ा आदि देता था। इसके अलावा राज्य द्वारा सैन्य कुशलता में वृद्धि के लिए समय-समय पर प्रशिक्षित किया जाता था।

बौद्ध-काल की शासन व्यवस्था में न्याय का क्या स्वरूप था, इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण निर्देश जातक-कथाओं में मिलते हैं। उस काल में न्याय इतनी पूर्णता को पहुँचा हुआ था कि बहुत कम मुकदमों में न्यायालयों के सम्मुख पेश होते थे। इस काल के न्यायाधीश अपना कार्य करते हुए व्यक्ति का ख्याल नहीं करते थे। निष्पक्ष न्याय ही उनकी दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण विचार होता था।

बौद्धकालीन शासन-व्यवस्था में यद्यपि न्याय निष्पक्ष तथा उचित होता था, पर दण्ड बड़े भयंकर दिये जाते थे। दंड देते समय शारीरिक कष्ट तथा अंग-भंग को अनुचित नहीं समझा जाता था। हाथी द्वारा कुचलकर मारने का उल्लेख भी अनेक स्थानों में मिलता है। दीवानी और फौजदारी संबंधी मामले राजा के प्रतिनिधि देखते थे, जो कठोर दंड देते थे। यथा-कोड़ा लगाना, सिर काट लेना, जीभ खींच लेना आदि। यद्यपि की फौजदारी मामले में दंड का विधान बदले की भावना से प्रेरित होता था। तात्पर्य यह कि आँख फोड़ने वाले की आँख निकाल ली जाती थी और दाँत तोड़ने वाले की दाँत।

अतएव बौद्धकालीन शासन-व्यवस्था के संक्षिप्ततः अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि निःसंदेह यह काल कई मामलों में विशिष्ट स्थान रखता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में यह काल यूँ कहें तो यह आकाशीय सितारे की तरह अपनी ओर आकर्षित करते रहा है।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. “हिन्दू विधि” – पंडित गिरिराज शंकर मिश्र
2. “प्राचीन भारत की शासन-संस्थाएँ तथा राजनीतिक विचार”- सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ-108
3. “दि जातक” – कबिल्ल, वॉल्यूम-11, पृष्ठ-166
4. “प्राचीन भारत की शासन-संस्थाएँ तथा राजनीतिक विचार”- सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ-109
5. “ज्योतिष्कावधान” – पृष्ठ-170
6. “जातक भाग-1, पृष्ठ-312
7. “अंगुतरनिकाय” भाग-3, पृष्ठ-218-219
- 8.

